नन्दीसूत्र और उसकी महत्ता

❖आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. ने नन्दीसूत्र का संस्कृत छाया, हिन्दी टीका एवं अनुवाद के साथ संशोधन–सम्पादन किया था, जिसका प्रकाशन सन् १९४२ में सातारा से हुआ था। आचार्य श्री ने तब प्रस्तावना लेखन के रूप में नन्दीसूत्र एवं सूत्रकार की जो चर्चा की थी, उसका अंश यहां प्रस्तुत है। आचार्य श्री ने कुछ विषयों का विवेचन आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. द्वारा लिखित भूमिका में आ जाने से छोड़ दिया था। इस प्रकार आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. एवं आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के लेख एक–दूसरे के पूरक हैं।–**सम्पादक**

नन्दीसूत्र की गणना मूलसूत्रों में होती है। निर्युक्तिकार ने 'नन्दी' शब्द का निक्षेप करते हुए कहा है कि 'भावंमि नाणपणगं' अर्थात् भावनिक्षेप में पाँच ज्ञान को नन्दी कहते हैं। नाट्यशास्त्र में और १२ प्रकार के वाद्य अर्थ में भी नन्दी शब्दका प्रयोग आता है। किन्तु यहां पाँच ज्ञानरूप भावनन्दी का वर्णन करने एवं भव्यजनों के प्रमोद का कारण होने से यह शास्त्र नन्दी कहलाता है। पाँच ज्ञान की सूचना करने से यह सूत्र है।

अंगादि आगमों में नन्दी का स्थान– अंग, उपांग, मूल व छेद इस प्रकार जैनागमों के प्रसिद्ध जो चार विभाग हैं उनमें प्रस्तुत नन्दीसूत्र का मूल आगम में स्थान है, क्योंकि इसमें आत्मा के मूल गुण ज्ञान का वर्णन किया गया है। (अंग, उपांग, मूल व छेद की विशेष जानकारी के लिए सातारा से प्रकाशित दशवैकालिक सूत्र की भूमिका देखें)

नन्दीसूत्र का विशेष परिचय

नन्दीसूत्र का विषय है आत्मा के ज्ञानगुण का वर्णन करना। इसमें ज्ञान से संबंध रखने वाले संस्थान आदि सब बातों को नहीं कह पाँचों ज्ञानों के मुख्य भेदों का स्वरूप और उनके जानने का विषय दिखाया गया है।

विषय–नन्दीसूत्र में आचार्य श्री देववाचक ने सर्वप्रथम अर्हदादि आवलिका रूप से ५० गाथाओं में मंगलाचरण किया है। फिर आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान आदि ज्ञान के पाँच भेद करके प्रकारान्तर से प्रत्यक्ष व परोक्ष संज्ञा से ज्ञान के दो प्रकार किये हैं। प्रत्यक्ष के इन्द्रिय प्रत्यक्ष व नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ऐसे दो भेद करके प्रथम ५ प्रकार का इन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है, जिसको जैन न्यायशास्त्र की परिभाषा में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। तदनन्तर नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष में अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान व केवलज्ञान का अवान्तर भेदों के साथ वर्णन किया है। इस प्रकार प्रधानत्व की दृष्टि से प्रत्यक्ष वर्णन करके फिर परोक्ष ज्ञान में आभिनिबोधक ज्ञान के अश्रुत-निश्रित व श्रुत-निश्रित ऐसे दो भेद किए गए हैं तथा औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओं के उदाहरणपूर्वक वर्णन से अश्रुत निश्रित मतिज्ञान कहा गया है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा भेद से भिन्न श्रुतनिश्रित मतिज्ञान का प्रभेदों से वर्णन करके प्रतिबोधक और मल्लक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टान्त से अवग्रह, ईहा आदि में परस्पर भेद समझाया गया है। इसके बाद उत्तरार्ध में श्रुतज्ञान परोक्ष के १. अक्षर २. अनक्षर ३. सन्नि ४. असन्नि ५. सम्यक् ६. मिथ्या ७. सादि ८. अनादि ९. सावसान १०. निरवसान ११. गमिक १२. अगमिक १३. अंगप्रविष्ट और १४. अनंगप्रविष्ट ऐसे १४ भेदों का कथन करके क्रमशः उनका स्वरूप बताया गया है। अंगबाह्यश्रुत में आवश्यक के ६ अध्ययनों और उत्कालिक व कालिक श्रुतों की परिगणना की गई है। बाद में अंगप्रविष्ट में ११ अंगों का विषय-परिचय व उनके श्रुतस्कन्ध, अध्ययन आदि का परिमाण एवं उद्देशन समुद्देशन काल का निर्देश किया गया है। फिर १२वें अंग दृष्टिवाद के १. परिकर्म २. सूत्र ३. पूर्वगत ४. अनुयोग व ५. चूलिका इन पाँचों प्रकारों का अवान्तर भेदों के साथ वर्णन किया गया है। अन्त में द्वादशांगी की विराधना का संसार में भ्रमण रूप और उसकी आराधना का संसार से तारणरूप फल बताया है। उपसंहार में पंचास्तिकाय की तरह द्वादशांगी की नित्यता दिखाकर श्रुतज्ञान के भेदों का दो गाथाओं से संग्रह किया है। आगे अनुयोग श्रवण एवं अनुयोग दान की विधि कही गई है। इस प्रकार श्रुतज्ञान परोक्ष के साथ नन्दीसूत्र की समाप्ति होती है।

रचना का मूल आधार एवं शैली– इसकी रचना का मूल आधार पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद पूर्व संभव लगता है, क्योंकि उसमें ज्ञानसंबंधी वर्णन है। वर्तमान के अंगोपांग आदि शास्त्र में भी इसका आधार मिलता है।

नन्दीसूत्र की रचना सूत्र और गाथा उभयरूप से हुई है। इसकी सूत्ररचना प्रश्नोत्तर के रूप में होने से प्रायः सुगम है। प्रत्येक प्रश्न वाक्य के अन्तिम पद को उत्तर वाक्य में भी दुहराया गया है। प्राचीन आगमों में बहुधा यह शैली दृष्टिगोचर होती है (देखें, भगवतीसूत्र आदि अंगशास्त्र)। यहां पाठकों को शंका होगी कि शास्त्र तो अल्पाक्षर और बहु अर्थवाले होते हैं, फिर इस सूत्र में एक ही पद की अनेक बाद आवृत्ति क्यों की? क्या इससे पुनरुक्ति दोष नहीं होगा? उत्तर में पुनरुक्ति सर्वत्र दोष ही होता है या कहीं गुण भी, यह समझना चाहिए। आचार्यों ने कई प्रसंग ऐसे माने हैं जिनमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता, यथा—

पुनरुक्तिर्न दुष्यते

उपर्युक्त श्लोक में आदरार्थ किये गये पुनरुक्त को भी निर्दोष माना है, इसके सिवाय कहीं—कहीं सुबोधार्थ की भी शाब्दिक या आर्थिक पुनरुक्ति की गई है, जैसे—आघविज्जइ, पन्न. आदि, इसके लिए आचार्य ने 'शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थम्' ऐसा उत्तर दिया है।

भाषा और ग्रन्थ परिमाण– भगवती सूत्र की तरह नन्दीसूत्र की मूलभाषा प्राचीन प्राकृत है। प्राकृत साहित्य में थोड़ा भी अभ्यास रखने वाला इस पर से सहज बोध कर सकता है। ग्रन्थ परिमाण सात सौ का कहा जाता है। जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४७४ की हस्तलिखित प्रति में ग्रन्थाग्र ७०० लिखा है। किन्तु 'जयइ' पद से अन्तिम 'से त्तं नन्दी' इस पद तक के पाठ को अक्षरगणना से गिनने पर २०६८६ अक्षर होते हैं, जिनके ६४६ श्लोक १४ अक्षर होते हैं। अगर कहा जाय कि ७०० की गणना आणुन्नानन्दी को लेकर पूरी की गई है, तो उसमें बहुत श्लोक बढ़ते हैं, अत: ऐसा मानना भी संगत नहीं। प्रचलित नन्दीसूत्र का मूलपाठ यदि कौंस के पाठों को मिलावें तो भी ६५० करीब होता है, संभव है कालक्रम से कुछ पाठ की कमी हो गई हो, या लेखकों ने अनुमान से ७०० लिखा हो।

कर्ता– नन्दीसूत्र के कर्ता श्रीदेववचाक आचार्य माने जाते हैं। चूर्णिकार श्रीजिनदासगणि आपका परिचय देते हुए लिखते हैं कि 'देववायगो साहुजण–हियट्ठाए इणमाह'– नन्दीचूर्णि (पृ. २०.१/१२)। इसकी पुष्टि में वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरि का उल्लेख इस प्रकार है– ''देववाचकोऽधिकृताध्ययनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वन्निदमाह'' फिर– 'ननु देववाचकरचितोऽयं ग्रन्थ इति' नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति (पृ.३७)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्दीसूत्र के लेखक श्रीदेववाचक आचार्य हैं, किन्तु यह विचारना आवश्यक हो जाता है कि आचार्य श्री ने इसका मौलिक निर्माण किया है या प्राचीन शास्त्रों से उद्धरण किया है?

टीकाकार श्री हरिभद्रसूरि ने मन:पर्यवज्ञान की व्याख्या करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ देववाचकरचित है, तब अप्रासंगिक गौतम का आमन्त्रण क्यों? इस शंका के उत्तर में आप कहते हैं कि ''पूर्वसूत्रों के आलापक ही अर्थ के वश से आचार्य ने रचे हैं'' देखो **'पूर्वसूत्रालापका एव अर्थवशाद्विरचिता:'**–श्रीमन्नन्दी–हा.वृ. (पृ. ४२)

उपाध्याय समयसुन्दर गणि भी लिखते है– 'अंगशास्त्रों के सिवाय अन्य शास्त्र आचार्यो ने अंगों से उद्धृत किये हैं' देखो– **'एकादश अंगानि गणधरभाषितानि, अन्यागमा: सर्वेऽपि छद्मस्थै अंगेभ्य: उद्धृता: सन्ति'**– पृ.७७, समाचारी शतक।

संकलनकर्ता व निर्माता– श्रीदेववाचक आचार्य प्रस्तुत सूत्र के संकलनकर्ता हैं। इन्होंने इसका संकलन किया है, नूतन निर्माण नहीं। उपाध्यायश्री ने अपनी भूमिका में इस विषय को सप्रमाण सिद्ध किया है। टीकाकार श्रीहरिभद्रूसरि जी भी मन:पर्यव ज्ञान की व्याख्या करते हुए 'पूर्व सूत्रों के आलाप को ही आचार्य ने अर्थवश से रचे हैं' ऐसा लिखते हैं, देखो टीका पृ.४२।

दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्र में आये हुए 'तेरासिय' पद का अर्थ चूर्णिकार व वृत्तिकारों ने 'आजीविक सम्प्रदाय' ही किया है। देखो– 'ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया' चूर्णि. पृ.१०६ पं.९ और 'त्रैराशिकाश्चा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवका एवोच्यन्ते' हारिभ्रदीया वृत्ति पृ.१०७ पं.७। यदि देववाचक को ही नन्दीसूत्र का मूल कर्ता माना होता तो चूर्णि और वृत्ति में 'तेरासिय' पद का अर्थ भी आचार्य त्रैराशिक सम्प्रदाय करते, क्योंकि वी.नि. ५४४ में रोहगुप्त आचार्य से त्रैराशिक सम्प्रदाय का आविर्भाव हो चुका था। फिर भी 'तेरासिय' पद से आजीवक ही कहे जाते हैं, ऐसा आचार्य श्री का निश्चयात्मक वचन यही सिद्ध करता है कि नन्दीसूत्र की मौलिक रचना गणधरकृत है, क्योंकि देववाचक का सत्ता समय दूष्यगणि के बाद माना गया है, वी. नि. ५४४ के पूर्व का नहीं। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'देववाचक' आचार्य नन्दीसूत्र के संकलनकर्ता ही हैं।

देववाचक और देवर्द्धिगणि– नन्दीसूत्र के संकलनकर्ता श्री देववाचक और देवर्द्धिगणि दोनों भिन्न–भिन्न हैं या एक ही आचार्य के ये दो नाम हैं, इस विषय में श्रीमन्नन्दीसूत्र के उपोद्घात में इस प्रकार लिखा है– ''देववाचक का दूसरा नाम श्री देवर्द्धिगणी है, किन्तु नन्दीसूत्र के संकलनकर्ता देववाचक आगमों को पुस्तकारूढ करने वाले देवर्द्धि से भिन्न हैं।'' स्थविरावली की मेरुतुंगिया टीका में भी 'दूसगणिणो य देवड्ढी' लिखकर देववाचक का दूसरा नाम देवर्द्धि माना है। 'गच्छमतप्रबन्ध अने संघ प्रगति' के लेखक बुद्धिसागर सूरी ने पृ. ५२६ की पट्टावली में भी देववाचक और देवर्द्धि को भिन्न–भिन्न माना है।

उपर्युक्त मान्यता में नन्दी व कल्पसूत्र की स्थविरावली प्रमाण समझी जाती है, क्योंकि नन्दीसूत्र के रचयिता देववाचक को वृत्तिकार ने दूष्यगणि का शिष्य कहा है और कल्प की स्थविरावली के निर्माता देवर्द्धिगणी शाण्डिल्य के शिष्य माने गये हैं, देवर्द्धि जो पूर्ववर्ती हैं वे शास्त्रों को पुस्तकारूढ करने वाले माने जायेंगे और दूष्यगणि के शिष्य देववाचक नन्दीसूत्र के लेखक होंगे। अर्थात् शास्त्रलेखन के बाद नन्दीसूत्र का निर्माण मानना होगा, जो सर्वथा विरुद्ध है।

नन्दीसूत्र की विशेषता

श्री नन्दीसूत्र और श्री देवर्द्धिगणी के विषय में संक्षिप्त परिचय देकर हम प्रस्तुत सूत्र की विशेषता पर विचार करते हैं। स्थानांग, समवायांग, भगवती व राजप्रश्नीय आदि अंग और उपांग शास्त्रों में प्रसंगोपात्त ज्ञान का वर्णन मिलता है, किन्तु इस प्रकार विशद रीति से पाँच ज्ञानों का एकत्र वर्णन नन्दीसूत्र में ही उपलब्ध होता है, श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के अवग्रह आदि भेदों को प्रतिबोधक व मल्लक के उदाहरण से समझाना और चार बुद्धिओं का उदाहरण के साथ परिचय देना यह नन्दीसूत्र की खास विशेषता है। पूर्व वर्णित विषय का गाथाओं के द्वारा संक्षेप में उपसंहार कर दिखाना यह इस सूत्र की दूसरी विशेषता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीसूत्र पर टीकाएँ

नन्दीसूत्र पर प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती ऐसी चार भाषाओं में टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम टीका जो चूर्णि कहलाती है, वह जिनदासगणि महत्तरकृत प्राकृत भाषा में है। दूसरी टीका श्री हरिभद्रसूरिकृत संस्कृत भाषा में है। यह टीका बहुत अच्छी है। प्रायः चूर्णि के आदर्श पर निर्माण की गई मालूम होती है। तीसरी श्रीमलयगिरि टीका है। इसमें मलयगिरि आचार्यकृत विस्तृत विवेचन है। चौथी गुजराती बालावबोध नाम की टीका रायबहादुर धनपतिसिंह जी की तरफ से प्रकाशित है। पाँचवी पूज्य श्री अमोलकऋषिकृत हिन्दी अनुवाद है। सभी मूल के साथ मुद्रित हैं।

शास्त्रान्तर के साथ नन्दीसूत्र का भेद

जब हम नन्दीसूत्र के विषय को अन्य शास्त्रों में देखते हैं, तब उनमें कहीं कहीं भेद भी मिलता है, जिसमें कुछ भेद तो विशेषतादर्शक है और कुछ मतभेदसूचक भी। यहां हम उनका संक्षेप में दिग्दर्शन कराते हैं—

१. अवधिज्ञान के विषय, संस्थान, आभ्यन्तर और बाह्य तथा देशावधि, सर्वावधि आदि विचार पन्नवणा के ३३ वें पद में मिलते हैं।

२. मतिसम्पदा के नाम से दशाश्रुतस्कन्ध के चतुर्थ अध्ययन में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा को क्षिप्र ग्रहण करना १, एक साथ बहुत ग्रहण करना २, अनेक प्रकार से और निश्चल रूप से ग्रहण करना ३—४, बिना किसी के सहारे तथा सन्देहरहित ग्रहण करना ५—६, ये छः प्रकार हैं, प्रतिपक्ष के ६ प्रकार मिलाने से अवग्रह आदि के १२—१२ भेद होते हैं। ये दोनों भेद विशेषता दर्शक हैं।

३. पाँच ज्ञानों में प्रथम के ३ ज्ञान मिथ्यादृष्टि के लिये मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। नन्दीसूत्र में मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान का उल्लेख मिलता है, किन्तु भगवती आदि शास्त्रों में मिथ्यादृष्टि के अवधिज्ञान को भी विभंगज्ञान कहा है। (श.८, उ.२)

४. **मतिज्ञान का विषय**— नन्दीसूत्र में मतिज्ञान का विषय दिखाते हुए कहा है कि मतिज्ञानी सामान्य रूप से सब द्रव्यों को जानता है किन्तु देखता नहीं। परन्तु भगवती सूत्र के श.८ उ.२ और सूत्र १०२ में कहा है कि "मतिज्ञानी सामान्य रूप से सब द्रव्यों को जानता और देखता है।" उपर्युक्त दोनों उल्लेखों में महान् भेद दिखता है। भगवती सूत्र में टीकाकार ने इसको वाचनान्तर माना है, उनका वह उल्लेख इस प्रकार है— "इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' इति पाठान्तरेणाधीतम्", दोनों वाचनाओं का टीकाकार ने इस प्रकार समन्वय किया है— 'आदेश' पद का 'श्रुत' अर्थ करके श्रुतज्ञान से उपलब्ध सब द्रव्यों को मतिज्ञानी जानता है, यह भगवती सूत्र का आशय है। नन्दीसूत्र में 'न पासइ' कहने का आशय इस प्रकार है—

आदेश का मतलब है प्रकार। वह सामान्य और विशेष ऐसे दो प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का है, उनमें द्रव्यजाति इस सामान्य प्रकार से धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्यों को मतिज्ञानी जानता है और धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय का देश इस विशेष रूप से भी जानता है, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्यों को नहीं देखता, केवल योग्य देश में स्थित शब्दरूप आदि को देखता है, देखें– वह टीका का अंश– "आदेश: प्रकार:, स च सामान्यतो विशेषतश्च। तत्र द्रव्यजातिसामान्यदेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति।"

श्रुतज्ञान द्वादशांगी का परिचय समवायांग सूत्र में नन्दीसूत्र से कुछ भिन्न मिलता है। परिशिष्ट में समवायांग का पाठ दिया है, जिसको पढ़कर पाठक सहज में भिन्न अंश को समझ सकते हैं। उसमें बहुत सा अंश विशिष्टतासूचक है, किन्तु आठवें, नववें और दशवें अंग के परिचय में जो भेद है वह विशेष विचारणीय है।

आठवें अंग के ८ वर्ग और उद्देशन काल हैं, परन्तु समवायांग में दस अध्ययन, सात वर्ग और १० उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल कहे हैं। टीकाकार ने इसका समाधान ऐसा किया है– १ प्रथम वर्ग की अपेक्षा ही दश अध्ययन घटित होते हैं, २ प्रथमवर्ग से इतर की अपेक्षा ७ वर्ग होते हैं। उद्देशनकाल के लिये लिखते हैं कि–'नास्याभिप्रायमवगच्छाम: अर्थात् इसका अभिप्राय हम नहीं समझते। सम्भव है यह वाचनान्तर की दृष्टि से लिखा गया हो।

नवम अंग के तीन वर्ग और तीन उद्देशनकाल हैं, किन्तु समवायांग में दश अध्ययन, तीन वर्ग और उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल १० लिखे हैं। टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि इसके विवेचन में लिखते हैं कि– **'वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते, इत्यतस्त्रय एव उद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति'**'–सम.।

अर्थात् वर्ग का एक साथ ही उद्देशन होता है, इसलिये तीन ही उद्देशनकाल होते हैं और ऐसा ही नन्दीसूत्र में कहा जाता है। यहां दश उद्देशनकाल दिखते हैं, किन्तु इसमें अभिप्राय क्या? वह मालुम नहीं होता।

प्रश्नव्याकरण के ४५ उद्देशनकाल के लिये भी टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि 'वाचनान्तर की अपेक्षा' ऐसा उत्तर देते हैं।

उपर्युक्त भेदों के सिवाय भी जो भेद हों, उनके लिये वाचना भेद को कारण समझना चाहिये।

मलयगिरि आचार्य ने अपनी टीका में यही कारण दिखाया है, यथा– "**इह हि स्कन्दिलाचार्य–प्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत्, तद्यथा एको वलभ्यामेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थ–संघटने परस्परवाचनाभेदो जातः। विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः।**"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयसुन्दर उपाध्याय ने अपने समाचारी शतक में भी लिखा है—

"तर्हि कथमेतावन्तो विसंवादा लिखितास्तेन? उच्यते—एकं तु कारणमिदं यथा—यथा यस्मिन्—यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिर्यद् यदुक्तम् तथा—तथा तस्मिन्—तस्मिन आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेनाऽपि पुस्तकारूढीकृतम्, न हि पापभीरवो महान्त 'इदं सत्यम्' 'इदं तु असत्यमिति' एकान्तेन प्ररूपयन्तीति, द्वितीयं तु कारणमिदं यथा वलभ्यां यस्मिन्काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता तथा तस्मिन्नेव काले मथुरानगर्यामपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गताऽऽगमालापकेषु संकलनायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः" — पृ. ८०

दुर्भिक्ष के बाद बचे हुए साधुओं ने जिस—जिस आगम में जैसा कहा वैसा देवर्द्धिगणी ने पुस्तकारूढ कर लिया, क्योंकि पापभीरु आचार्य यह सत्य, यह असत्य ऐसा एकान्त से प्ररूपण नहीं करते। दूसरा वलभी और मथुरा में एक समय दो वाचनाएँ हुई थी, जिसमें मृतावशिष्ट साधुओं के मुख से निकले हुए आलापकों की संकलना में विस्मृतत्व आदि दोष ही वाचना के विसंवाद का कारण हुआ। उपर्युक्त उल्लेख से वाचनाभेद व मतभेद का कारण स्पष्ट हो जाता है, इसलिये शंका करने की आवश्यकता नहीं रहती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org